जीवन जीने की कला

योग को तन-मन के विकार नष्ट करने और सुख, संतुष्टि की प्राप्ति का उपाय बता रहे हैं गिरीश्वर मिश्र

'योग' का अर्थ है जुड़ना और जोड़ना। गणित में जब कुछ अंकों को मिलाया (या जोड़ा) जाता है तो उस क्रिया को और क्रिया करने से जो परिणाम आता है उसे भी जोड़ कहते हैं। हम सामाजिक जीवन में लोगों से मिलते-मिलाते हैं वह भी जोड़ है। जोड़ से गति आती है, शक्ति मिलती है और हम तरह-तरह के काम को अंजाम दे पाते हैं। योग से लय बनती है और हमें अपने आप को खुद अपने अनुभव और प्रवास से रचने-गढ़ने का अवसर मिलता है। योग से हमारा आत्म साक्षात्कार होता है और हम अपने को पहचानते हैं। हम आत्म-परिष्कार की दिशा में आगे बढ़ते हैं। साधारण सी यौगिक क्रियाओं को भी करते वक्त हमें अपने जीवन और अपनी सत्ता का ठोस अहसास होता है। अक्सर हमें हमारी चेतना नहीं होती और हम सांस लेते तो हैं पर सांस कैसे ले रहे हैं इसकी पहचान नहीं होती है। हमें अपनी खबर हो भी कैसे, आज के व्यस्त जमाने में हमारी खुद से मुलाकात की जगह ही कम होती है। योग इस अहसास और मुलाकात की जगह बनाता है।

सचमुच योग में हमारे जीवन का रहस्य छिपा हुआ है। योग की इस खासियत को शायद हर सभ्यता ने पहचाना होगा पर भारत ने इसे अपने आप में एक विषय या शास्त्र के रूप में महत्व दिया और इसकी उपयोगिता को अनुभव करते हुए इसके विभिन्न पक्षों को विकसित किया। आज हमारे सामने अष्टांग योग, विपासना, प्रेक्षा ध्यान, सुदर्शन क्रिया आदि नामों से प्रसिद्ध भिन्न-भिन्न तरह की योग पद्धतियों और परंपराओं का प्रचार-प्रसार हो रहा है।

योग के पहले व्याख्याकार पतंजलि की मानें तो योग मन की बेमतलब की अनजानी दौड़ पर लगाम लगाना है। उनका कहना है कि जब बाहर की दुनिया में मन की दौड़ विराम लेती है तो उस एकांत के क्षण में हम अपने ऊपर के आवरणों से मुक्त होते हैं और अपने स्वाभाविक स्वरूप का बोध करते हैं, पहचानते हैं कि हम कौन हैं। मन की मुसीबत (या कहें मजबूरी) यह है कि उसका भरोसा करना ठीक नहीं। वह बड़ा ही चंचल है, टिकता नहीं है और उसमें सदा उथल-पुथल मचती रहती है। उसका स्वभाव ही ऐसा है कि वह जिधर को जाता है, जहां भी जाता है उसी का हो जाता है, वही हो जाता है। उसका अपना तो कुछ है ही नहीं। आंख, कान, नाक, जीभ ये सब हमारी ज्ञानेंद्रियां ऐसी होती हैं कि दुनियावी वस्तुएं उन्हें अपनी ओर खींचती रहती हैं। उनको रोकना मुश्किल है। उसके लिए तो लगाम वाला ही चाहिए। पर यह होगा कैसे? इसके लिए मन को साधना होगा। योग इसी का मार्ग और उपाय है।

वैसे तो मन पर लगाम लगाना (या पतंजलि के शब्दों में कहें 'चित्त वृत्ति का निरोध' बिलकुल अटपटी और बेतुकी सी बात लगती है। हम सब का अनुभव है कि हमारी दैनिक जिंदगी में मनपसंद होने या मिलने पर ही हमें तृप्ति का अहसास होता है और मजा आता है। यही मनमाफिक है। दूसरे शब्दों में मन पर लगाम में ढील देना ही सुखकर या प्रीतिकर है। बच्चों और बाल मन के लिए तो यही सच है। पर मनमौजी बालमन अपरिपक्व और नासमझ होता है। वह क्षणों में जीता है और उसके लिए केवल वर्तमान ही सत्य होता है। पर पढ़-लिख कर, दुनियादारी में 'ट्रेनिंग' लेकर जो दिमाग बनता है उसकी अनंत इच्छाओं का सिलसिला चलता ही रहता है। उसका कोई हिसाब नहीं।

बाहर से अंदर की यात्रा

◆ मन की सुख-शांति, स्वस्तिभाव और स्वास्थ्य के लिए योग एक समाधान देता है। उसे जीवनशैली के रूप में समग्रता में लेना होगा। योग धीरे-धीरे बाहर से अंदर की यात्रा कराता है

वह अपने बेलगाम मन को कुछ भी करने के लिए उतावला पाता है क्योंकि वह सिर्फ वर्तमान में ही नहीं रहता। वह एक महत्वाकांक्षी भविष्य के सपने देखता है और उससे उपजे भ्रम को अंजाम देने के लिए वर्तमान को भूल जाता है, जीवन को भूल जाता है।

जब आदमी एक बेलगाम मन की दौड़ में शामिल होता है तब उसका विवेक मर जाता है और सामाजिक चेतना भी शून्य हो जाती है। ऐसे में आंखों पर पट्टी पड़ी होने से वह कुछ भी कर गुजरने पर उतारू हो जाता है। जब हम अपने आसपास के माहौल पर नजर डालते हैं तो इस बेलगाम मन की अफरातफरी और दौड़ के कुत्सित परिणामों को देखते हैं। आज हत्या, हिंसा, घृणा, घूसखोरी, चोरी और तरह-तरह के जघन्य अपराधों में जो बेतहाशा वृद्धि दिख रही है, आपसी संबंधों और रिश्तों में जो बेरुखी और तल्खी बढ़ रही है और बेवजह अपने से अलग दूसरी तरह के विचारों, समुदायों, धर्मों और भाषाओं के लिए जो असहिष्णुता बढ़ रही है वह केवल समाज में फैली सामाजिक आर्थिक-विषमता के आधार पर ही नहीं समझी जा सकती। कठिनाई यह भी है कि आज बढ़ती समृद्धि के साथ मानसिक अशांति, लिप्सा और द्वंद्व भी बढ़ते जा रहे हैं। सुख की कुंजी खो सी गई है और उसकी तलाश हम अपने बाहर वहां करते फिर रहे हैं जहां वह थी ही नहीं। हमारा हाल उस मृग की तरह हो रहा है जो अपनी ही नाभि में छिपी कस्तूरी को वन-वन खोजता फिर रहा है और वह सब दूर होता जा रहा है।

मन की सुख-शांति, स्वस्तिभाव और स्वास्थ्य के लिए योग एक समाधान देता है। उसे जीवनशैली के रूप में समग्रता में लेना होगा। योग धीरे-धीरे बाहर से अंदर की यात्रा कराता है। यम, नियम, आसन और प्राणायाम जहां शरीर और बाह्य आचरण को साधते हैं वहीं ध्यान, धारणा, प्रत्याहार और समाधि अंतर्यात्रा पर ले जाते हैं। यम और नियम वे विधि निषेध हैं जो व्यक्ति के निजी और सामाजिक जीवन के बीच संतुलन बैठाते हैं। उन्हें अपनाने से हमारे विकार जाते रहते हैं, हमारा शोधन होता रहता है और हम सबसे-अपने सामाजिक परिवेश और प्रकृति से जुड़े रहते हैं। मन को बाहर की ओर से अंदर की ओर खींचना ही प्रत्याहार है। मन को शांति के लिए जिस अवकाश की जरूरत होती है वह इसी से आता है, क्योंकि हमारी प्रवृत्ति मन को भरते जाने की है-ठीक वैसे ही जैसे हम बाहर अपने घर में चीजों की नुमाइश लगाते नहीं थकते। ध्यान और समाधि की ओर जाने की कोशिश उस अनंत चेतना और पूर्णता की ओर की यात्रा होती है जो शरीर और मन को विश्रांति देती है। इसका सुख अपरिमेय होता है।

जीवन जीने की पहेली हर किसी के लिए एक चुनौती होती है जिससे पार पाने की जुगत लगाने की कोशिश हर कोई करता है। जीना एक ऐसी उलझन है जिससे हर किसी को जूझना ही होता है। इस अछोर मुश्किल से उबरने या बचने का कोई सीधा-साधा नुस्खा नहीं होता है। इसे सुलझाना और फिर संवारना हमारे अपने निजी प्रयास पर निर्भर करता है। पर अच्छी तरह जीने का विज्ञान और कला को सीखने का कोई स्कूल या कॉलेज नहीं है। योग इसी का शास्त्र है। योग है तो जीवन है।

(लेखक महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय के कुलपति हैं)
response@jagran.com